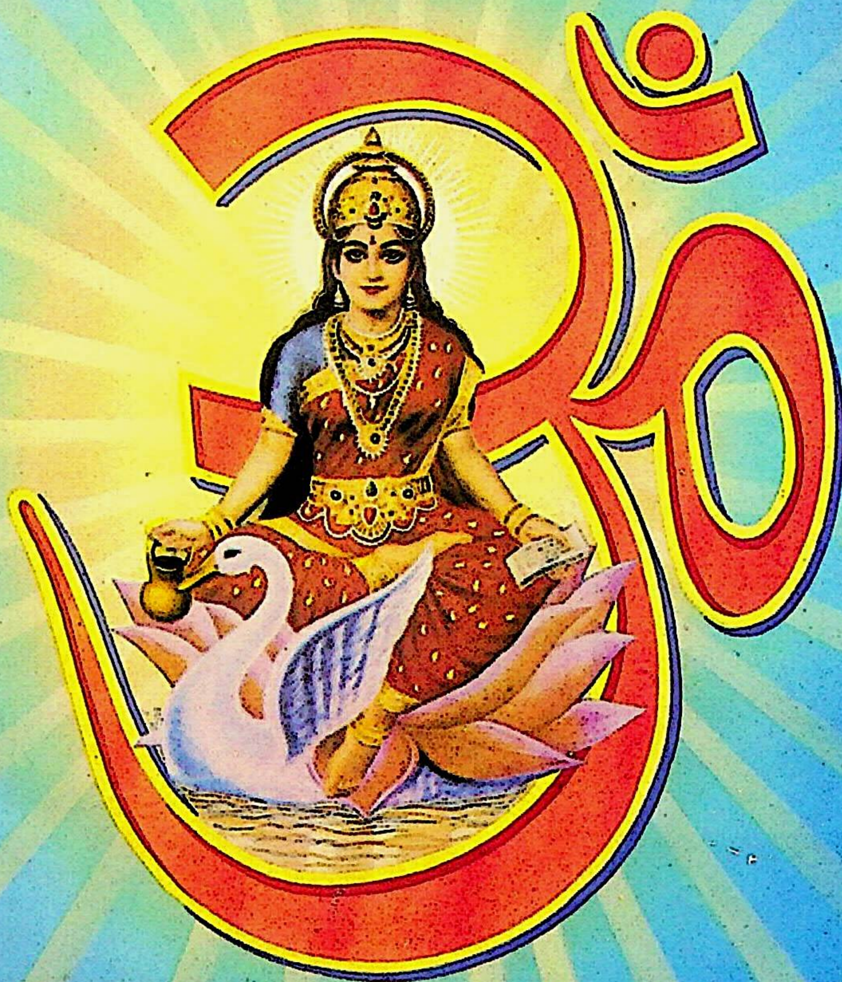
गायत्री मंत्र के "यो" अक्षर की व्याख्या

प्राणघातक व्यसन



पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

लेखक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

मूल्य : २.०० रुपया

२००४

मुद्रक :
युग निर्माण योजना प्रेस
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

प्राणघातक व्यसन

गायत्री महामंत्र का उन्नीसवाँ अक्षर 'यो' हमको हानिकारक दुर्व्यसनों से बचने की शिखा देता है–

योजनं व्यसनेभ्यः स्यात्तानिपुंसस्तु शत्रवः ।
मिलित्वैतानि सर्वाणि समयेध्नन्ति मानवम् ।।

अर्थात्–"व्यसनों से कोसों दूर रहे, क्योंकि वे प्राणघातक शत्रु हैं ।

व्यसन मनुष्य के वास्तविक प्राणघातक शत्रु हैं । इनमें मादक पदार्थ प्रधान हैं । तमाखू, चाय, गाँजा, चरस, भाँग, अफीम, शराब आदि नशीली चीजें एक से एक बढ़कर हानिकारक हैं । जैसे थके हुए घोड़े को चाबुक मारकर दौड़ाते हैं, परन्तु अन्त में उससे घोड़े की बची–खुची शक्ति भी नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार नशा पीने से आरम्भ में तो कुछ फुर्ती–सी दिखलाई पड़ती है, परन्तु परिणाम स्वरूप उससे रही सही शक्ति भी जाती रहती है । मादक द्रव्य सेवन करने वाला व्यक्ति दिन–दिन क्षीण होते–होते अकाल मृत्यु के मुख में चला जाता है । व्यसन मित्र के रूप में हमारे शरीर में घुसते हैं और शत्रु बनकर उसे मार डालते हैं ।

नशीले पदार्थों के अतिरिक्त और भी ऐसी आदतें हैं जो शरीर और मन को हानि पहुँचाती हैं, पर आकर्षण और आदत के कारण मनुष्य उनका गुलाम बन जाता है । सिनेमा, नाच--रंग, व्यभिचार, जुआ आदि कितनी ही हानिकारक और अप्रतिष्ठाजनक आदतों में लोग फँस जाते हैं और अपना धन, समय तथा स्वास्थ्य बर्बाद कर डालते हैं ।

ये दुर्व्यसन कुछ थोड़े से व्यक्तियों के जीवन को ही नष्ट नहीं करते, वरन् बड़े–बड़े देश, राष्ट्र, जन–समुदाय इनके कारण सर्वनाश के गड्ढे में गिर जाते हैं । जैसा भारतीय इतिहास के पाठक जानते हैं कि मुगल साम्राज्य का मूलोच्छेद शराबखोरी के कारण ही हुआ । इसी प्रकार चीन का राष्ट्र अफीमखोरी के कारण नष्ट हो गया । पुराने जमाने में भी मिश्र, यूनान, और रोम के उन्नतिशील और शक्तिशाली राष्ट्र मद्य के फन्दे में फँसकर पतन के गर्त में गिर चुके हैं । हमारे प्राचीन इतिहास में यादवों का शक्तिशाली राज्य मद्यपान के व्यसन के कारण ही नष्ट हो गया और श्रीकृष्ण जैसे लोकोत्तर पुरुष भी उसकी रक्षा न कर सके । यही कारण है कि हिन्दू धर्म शास्त्रों में सुरापान की गिनती महापातकों में की गई है ।

ब्रह्महत्यां, सुरापश्च स्तेयो गुरुतल्पगः ।
एते सर्वे पृथाज्ञेया महापातकिन्त्ते नराः ।।

अर्थात्–"ब्रह्मघाती, मद्यप, चोर, गुरु पत्नी में गमन करने वाला–ये सभी महापातकी और निन्दित हैं, इनका परित्याग कर देना चाहिए ।

मदिरा प्रकृति के प्रतिकूल है

मदिरा सेवन करने वालों की दलील है कि भोजन के साथ थोड़ी–सी शराब ले लेने से पाचन क्रिया भली–भाँति हो जाती है । स्थूल दृष्टि से अवश्य ऐसा प्रतीत होता है कि भोजन खूब पच रहा है । खुलकर झूठी भूख लगने लगती है । इसका कारण यह होता है कि मदिरा में तेजाब होता है जो कि भोजन को गला देता है, किन्तु उसकी प्रतिक्रिया आँतों पर भी होती है । भीतर ही भीतर आँतें भी गलती रहती हैं और शरीर की पाचन प्रणाली की दशा इतनी बिगड़ जाती है कि शराबी आदमी अनेक उदर सम्बन्धी रोगों से ग्रसित होकर काल–कवलित हो जाता है ।

मदिरा पीना प्रकृति के प्रतिकूल है । जब मदिरा का प्याला हाथ में लेकर मुख के समीप लाते हैं तो उसकी बू दिमाग में पहुँचते ही त्वचा में सिकुड़न आ जाती है, आँखें भी बन्द हो जाती हैं, परन्तु मनुष्य उसे प्रकृति के प्रतिकूल जबरदस्ती पी जाता है । मदिरा के स्थान पर दूध का प्याला पीने के लिए जब मुख के निकट लाते हैं, तब कोई अंग उसे अस्वीकार नहीं करता, बल्कि उसे बड़े चाव से मनुष्य पी जाता है । मदिरा का सेवन करने पर शरीर का प्रत्येक अंग उस समय चेतना–शून्य–सा होने लगता है । बुद्धि, निर्णय शक्ति, आत्मसंयम, इच्छा शक्ति, सदासद्विवेक, न्यायान्याय की भावना, कर्तव्य, प्रेम, करुणा, स्वार्थ त्याग नष्ट हो जाते हैं । अश्लील बातें मुँह से निकलने लगती हैं, व सारे शरीर को एक बार हिला देती हैं । यदि अत्यधिक पी गया, तो तबियत मितलाने लगती है और वह शरीर से कै के रूप में बाहर निकल जाती है । मनुष्य मद्यप की दशा में बेइज्जत होता है ।

मद्य हमें कमजोर, निस्तेज, शक्तिहीन बनाता है । कमजोर रहना अपराध है । अतः शराब हमें अपराधी बनाती है । इसलिए वह सर्वथा त्याज्य है ।

गाँधी जी की विचारधारा एवं रचनात्मक कार्यक्रम में शराबबन्दी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है । विदेशी सरकार ने मादक पदार्थों–शराब, अफीम, तम्बाकू, चाय, काफी, गाँजा, भाँग, कोकेन इत्यादि का प्रचार बढ़ाया तथा

हमें उनका अभ्यस्त बनाकर क्षीणकाय, अल्पायु एवं दुर्बल–मन बना दिया है । शराबी की स्मरण शक्ति बिगड़ जाती है, बुद्धि, विवेक और नीति का नियंत्रण उठते ही, वह मनोवेगों के साम्राज्य में विहार करने लगता है, दुर्विकार उस पर आधिपत्य जमा लेते हैं । वह खाना, वासना और मद्य का ही गुलाम बन जाता है । मद्य अनियमितता, मूर्खता, अयोग्यता, आकस्मिक दुर्घटनाओं का एक महान कारण है । शराबी न सामाजिक प्रतिष्ठा का ध्यान रखता है, न रोगों का या परमात्मा का, उसकी प्रवृत्ति निरन्तर व्यभिचार की ओर होती जाती है । महात्मा जी का विचार था कि मादक वस्तुओं का व्यवहार मनुष्य तथा राष्ट्र को पतन की ओर ले जाता है । नागरिकों के चरित्र का पतन, राष्ट्र का पतन है ।

कुछ व्यक्तियों की यह गलत धारणा हो गई है कि शराब से शक्ति प्राप्त होती है । शराब उत्तेजक मात्रा है । पीने के कुछ काल तक इससे हमारी पूर्व संचित शक्ति एकत्रित होकर उद्दीप्त मात्र होती है । नई शक्ति नहीं आती । यह शक्ति उत्पन्न करने के स्थान पर, नशे के बाद मनुष्य को निर्बल निस्तेज और निकम्मा बना जाती है । आदत पड़ने पर इसकी उत्तेजना के बिना कार्य में तबियत नहीं लगती । गरीब भारत का इतना रुपया इसमें व्यय हो जाता है कि पौष्टिक भोजन, दूध, फल, इत्यादि के लिए कुछ शेष नहीं बचता ।

जो व्यक्ति उत्तेजक पदार्थों से शक्ति प्राप्ति की आशा रखता है, वह कृत्रिम माया की मरीचिका में निवास करता है । स्वाभाविक, प्राकृतिक शक्ति ही मनुष्य की वास्तविक पूँजी हो सकती है । वस्तुतः शराब से शक्ति प्राप्ति की धारणा भ्रान्तिमूलक है ।

पाश्चात्य देशों में अत्यधिक ठण्ड के कारण शराब का प्रचलन हुआ है, किन्तु वे लोग यह समझने लगे हैं कि मदिरा से मानसिक शक्ति को सहायता प्राप्त होती है, कल्पना स्वच्छन्दता पूर्वक कार्य करने लगती है, भावनाएँ और नव योजनाएँ स्फुरित होने लगती हैं, विचार कोमल, सूक्ष्म और महत्वपूर्ण हो जाते हैं । ये बातें भ्रान्ति मूलक हैं । मदिरा की उत्तेजना में सही विचार कैसे सम्भव हैं ?

मदिरा से तर्क, विवेक बुद्धि, संयत भाव से निज कार्य शुद्ध रूप में कैसे कर सकते हैं ? मदिरा तमोगुणी है, कार्य शक्ति का क्षय करती है, प्रतिष्ठा,

कीर्ति का नाश कर पतन और व्यभिचार की ओर प्रवृत्त करती है । फिर यह कैसे संभव है कि यह उच्च भावनाएँ या सूक्ष्म कल्पनाएँ, सही विचार प्रदान कर सके ? मदिरा पीने वाले व्यक्ति की सौन्दर्य की अनुभूति कभी ठीक नहीं हो सकती । उसके भावों का उन्मेष भी ठीक नहीं हो सकता । उत्तेजना की अवस्था में शुद्ध कलाकृति का निर्णय नहीं हो सकता ।

अतः मन से यह भ्रमात्मक धारणा निकाल देनी चाहिए कि मद्य विचार शक्ति के विकास में सहायक है । इसके विपरीत शराब से उलटे मनुष्य की रचनात्मक शक्तियों–जैसे कल्पना, भावना, विचार दृढ़ता, निश्चय, काव्य प्रतिभा, मानसिक संतुलन, विवेक, तर्क शान्ति का ह्रास होता है । मनुष्य की उच्च सात्विक दैवी सम्पदाओं के स्थान पर यह मन पर आसुरी तमोगुण प्रधान शैतानी दुष्प्रवृत्तियों का अधिकार करा देती है । उसमें आत्मनिरीक्षण, संयम, आत्मनियंत्रण, गम्भीर कार्य करने की शक्तियाँ नहीं रहतीं । शराब के नशे की अवस्था में किया गया कार्य मनःशान्ति की अवस्था में किए गये कार्य से निम्नकोटि का होता है ।

तम्बाकू का हानिकारक प्रभाव

तम्बाकू का प्रचार इन दिनों बेहद बढ़ गया है । पुराने जमाने में इसे कभी–कभी औषधि के रूप में काम में लाया जाता था, पर इधर कुछ सौ वर्षों से इसने एक बहुत बड़े दुर्व्यसन का रूप धारण कर लिया है । बच्चे से लेकर वृद्ध तक बीड़ी, सिगरेट मुँह से लगाये देखे जाते हैं और स्त्रियाँ तक इससे नहीं बची हैं । इसके जहरीले धुँए से मनुष्य निर्बल, आलसी, विलासी और उत्तेजक स्वभाव का बनता है । तम्बाकू का अधिक सेवन करने वालों को क्षय रोग, हृदय रोग, उदर रोग, नेत्रों की खरावी, नपुंसकता, पागलपन आदि तरह–तरह की बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं । विलायत के बड़े–बड़े डाक्टरों ने खोज करके बतलाया है कि महाभयानक 'कैंसर' रोग काएक वड़ा कारण धूम्रपान ही होता है ।

तम्बाकू में एक महा भयंकर विष पाया जाता है, जिसे 'निकोटिन' कहते हैं । तीन सेर तम्बाकू की सूखी पत्तियों में से एक छटाँक 'निकोटिन' निकाला जा सकता है । निकोटिन संखिये से भी तीव्र विष है, जो मनुष्य पर धीरे–धीरे प्रभाव डालकर प्राणान्त करता है । निकोटिन की एक बूँद खरगोश की त्वचा पर डालने से उसकी मृत्यु हो जाती है । चीन में

आत्महत्या करने का यह एक सुगम साधना बन गया था । वहाँ लोग जीवन से तंग आकर हुक्के का सड़ा पानी पीकर जीवन लीला समाप्त कर लेते थे । आरम्भ में तम्बाकू पीने से कै, दस्त, चक्कर आने शुरू हो जाते हैं ।

डॉ. केलाग ने बतलाया है कि आधा सेर तम्बाकू में ३८० ग्रेन निकोटिन विष होता है । यह इतना भयंकर होता है कि एक ग्रेन का दसवाँ हिस्सा कुत्ते को तीन मिनट में मार सकता है । एक व्यक्ति इस विष से तीस सेकण्ड में मर गया था । आधा सेर तम्बाकू का निकोटिन तीन सौ आदमियों के प्राण ले सकता है । एक साधारण सिगरेट में जितनी तम्बाकू होती है, उसके विष से दो आदमियों के प्राण लिए जा सकते हैं । भयंकर से भयंकर विषधर सर्प तम्बाकू के विष से इस तरह मर गये मानो उन पर बिजली गिर पड़ी हो ।

तम्बाकू का सबसे घातक प्रभाव हमारे रक्त पर पड़ता है । विषैले परमाणु फेंफड़े और हृदय तक पहुँच कर मनुष्य के रक्त को विकारमय, रोगी और निर्बल बना देते हैं, जब यह विषैला रक्त नलिकाओं में प्रवाहित रहता है तो रोग धीरे–धीरे उस पर अपना अधिकार जमा लेते हैं ।

सर्वप्रथम रोग क्षय या तपेदिक है । तपेदिक का कारण दूषित वायु है । सिगरेट, हुक्का या बीड़ी का दूषित धुआँ जब पुनः–पुनः श्वासोच्छवास द्वारा अन्दर पहुँचता है तो इसका विषैला प्रभाव हमारी जीवनी शक्ति पर पड़ता है । अधिक धूम्रपान करने वालों के फेंफड़े सड़ जाते हैं ।

तम्बाकू मस्तिष्क को निष्क्रिय करता है । हृदय रोग तम्बाकू की विशेष देन है । इसका विष हमारे फेंफड़ों और हृदय पर आक्रमण किया करता है । तम्बाकू के विष के प्रभाव से हृदय की आवरणात्मक त्वचा सुन्न पड़ जाती है और हृदय की गति को विषम बना देती है ।

बीड़ी, सिगरेट, हुक्का पीने से हानियाँ

पीने के तम्बाकू का कुत्सित प्रभाव नेत्रों के रोगों में विशेष रूप से प्रकट होता है । तम्बाकू के विष से न केवल फेफड़े, हृदय, या मस्तिष्क, प्रत्युत नेत्रों को भी हानि पहुँचती है । यदि आप नेत्र चिकित्सकों से सम्मति लें, तो वे एक स्वर से यह निर्देश करेंगे कि तम्बाकू से मनुष्य की दृष्टि निर्बल पड़ जाती है । श्री बैजनाथ महोदय के अनुसार तम्बाकू के भक्तों में अन्धापन आ जाता है । वे विभिन्न रंगों को पहिचान नहीं पाते । जर्मनी और बेल्जियम

में तम्बाकू जनित नेत्र रोगों की अधिकता है ।

तम्बाकू कामोद्दीपक पदार्थ है । इसकी उत्तेजना में मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियाँ उत्तेजित हो उठती हैं और मनुष्य व्यभिचार अशिष्टता, अनीति की ओर प्रवृत्त होता है । तम्बाकू पीने से चरित्रहीनता आती है ।

चरित्र भ्रष्टता के साथ नपुंसकता आती है । डॉ. फूट लिखते हैं कि "मैंने देखा है कि तम्बाकू नपुंसकता के कारणों में एक मुख्य कारण है, और जब मेरे पास ऐसे लोग चिकित्सा के लिए आते हैं, तो मैं उनसे कहता हूँ कि तुम्हें दो में से एक बात पसन्द करनी होगी–विषय सुख या तम्बाकू । तम्बाकू से प्रेम हो तो सांसारिक सुख से निराश हो जाओ । वास्तव में तम्बाकू से शरीर की सम्पूर्ण नसें ढीली पड़ जाती है, पर कभी–कभी सारे शरीर पर इसका दुष्परिणाम देर से प्रकट होता है । सब से पहले इसका विषैला प्रभाव शरीर के सबसे अधिक कमजोर अंग पर ही होता है और चूँकि पुरुष अपनी जननेन्द्रिय का बहुत दुरुपयोग करता है, तम्बाकू का विष इस दुर्बल और दलित अंग को सबसे पहले धर दबाता है ।

हमारे धार्मिक ग्रन्थों में भी तम्बाकू का सेवन अत्यन्त निन्दनीय बतलाया गया है । विष्णु पुराण में तम्बाकू पीने से गरीबी, दुःख, तामसवृत्ति की उत्पत्ति होने का निर्देश है । एक स्थान पर कहा गया है–

"तमाल भक्षितयेन सगच्छेन्नरकार्णवे"

पद्मपुराण में कहा गया है–

धूम्रपानरतं विप्रं दानं कुर्वन्ति ये नराः ।
दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्रामशूकरः ।।

अर्थात्–जो मनुष्य धूम्रपान करने वाले ब्राह्मण को दान देते हैं तो वे नरक में जाते हैं और ब्राह्मण शूकर की योनि पाता है ।

तम्बाकू से दाँत खराब होकर उनका रंग पीला और मटमैला हो जाता है । एक डाक्टर ने लिखा है कि तम्बाकू पीने वालों के पेट के भीतर की कोमल त्वचा पर गोल–गोल दाग पड़ जाते हैं । रक्त पतला होकर कमजोर हो जाता है । फेंफड़े निर्बल हो जाते हैं और हृदय की स्वाभाविक धड़कन में विकार उत्पन्न होकर एक प्रकार का कम्पन शुरू हो जाता है ।

इस प्रकार तम्बाकू मनुष्य के स्वाभाविक स्वास्थ्य को नष्ट करके शरीर में तरह–तरह के विकार उत्पन्न कर देती है । यह मनुष्य के शरीर के

लिए एक विजातीय द्रव्य है, इसलिए शरीर इसे किसी दशा में अपने भीतर नहीं रख सकता और इसी से तम्बाकू खाने वालों को जगह-जगह थूकते रहने की घृणित आदत पड़ जाती है । तम्बाकू के व्यवहार से मनुष्य की श्वाँस नली, फेंफड़ों में जख्म होकर सड़न उत्पन्न हो जाती है, जिससे खाँसी की उत्पत्ति होती है । यही कारण है कि जो लोग सदैव तम्बाकू पीते हैं, बड़ी उम्र में उनको स्थाई रूप से खाँसी की शिकायत पैदा हो जाती है जो अन्त में मृत्यु के साथ ही जाती है ।

पान से चरित्र-हीनता की वृद्धि होती है

नित्य प्रति बाजारों, गलियों और रेलवे स्टेशनों पर बढ़ती हुई पान की आदत देखी जा सकती है । आधुनिक युग में पान का व्यसन उत्तरोत्तर वृद्धि पर है । इसका प्रयोग प्रायः हानिकर है, यह लोग जानते ही नहीं । आधुनिक सभ्यता ने इसे कुछ ऐसा अपना लिया है कि इसमें अशिष्टता, हानि या अश्लीलता नहीं समझी जाती ।

पान वासना उद्दीप्त करने वाला उत्तेजक मिश्रण है । मध्य युग में वेश्याएँ विशेष रूप से पान का उपयोग करती रही थीं । आज भी अधिकतर निम्नकोटि के मिरासी, भिश्ती, मजदूर, छैलछबीले कामुक व्यक्ति इसका प्रयोग करते हैं । वेश्या, मदिरा और पान इन तीनों का संग है । मुगल युग में वेश्याओं और कामुकता को विशेष प्रोत्साहन मिलने से पान की लोकप्रियता बढ़ी । मुगल बादशाह और नवाब पान के आदी ही नहीं बन गये थे, वरन् यह व्यसन इतनी बढ़ती पर था कि उसके बिना उनका जीवन दूभर हो गया था । पानदान और वेश्याएँ उनके साथ युद्ध में भी रहती थीं ।

आजकल पान का प्रचार इतना बढ़ गया है कि साधारण व्यक्ति भी दो-चार पान खा ही लेता है । अभ्यस्त व्यक्ति पचास से सौ तक पान चबा जाते हैं । सुपारी को महीन काटकर खुशबूदार चीजें मिलाकर ऐसा आकर्षक बनाया जाता है कि उसे खाना फैशन-सा हो गया है । जर्दा, अधिक चूना, तथा अनेक कृत्रिम पदार्थ डालकर उसे ऐसा बना दिया जाता है कि उससे हानि होने की अधिक सम्भावना है ।

पान का रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें पियोरीन, पियोरिडीन, ऐरेकोलीन, एमीलीन, मरक्यूरिक एलमीन, पियेरोवेटीन इत्यादि विष तत्व

विद्यमान रहते हैं । स्थान वैभिन्य के साथ–साथ पान के रासायनिक तत्व भी परिवर्तित होते रहते हैं । जैसे मद्रासी पान में पियरोवेटीन नामक विष की मात्रा अधिक है । बंगला पान सबसे अधिक विषयुक्त समझा जाता है ।

एक विशेषज्ञ का कथन है कि यदि सादे २८५ पानों का विष निकाल कर कुत्तों को खिला दिया जाय तो वे पाँच मिनट के अन्दर समाप्त हो जायेंगे, परन्तु चूने और कत्थे से लगे ५८ पान ही विष की उक्त मात्रा देने में समर्थ हो जायेंगे । इसलिए कत्थे चूने लगे पान सादे पान से अधिक विषैले प्रमाणित हुए ।

पियरोवेटीन नामक विष ह्रदय गति को शिथिल तथा निष्क्रिय बनाने वाला होता है । अन्य विषों के कीटाणु मस्तिष्क पर आक्रमण करते हैं और उसकी सूक्ष्मता नष्ट कर देते हैं । इन विषों के प्रभाव से मस्तिष्क अशान्त रहने लगता है । नींद का लोप हो जाता है । पान से कामेन्द्रियाँ उत्तेजित रहती हैं तथा मन विषय वासनामय गन्दे विचारों से परिपूर्ण रहता है । कामवासना को बढ़ाने के कारण यह आध्यात्मिक सात्विक प्रवृत्ति के व्यक्तियों के लिए विष तुल्य है । कहा जाता है कि एरकोलिन विष चूने तथा कत्थे से संयुक्त होकर, अत्यन्त कामोद्दीपक हो जाता है । यह पुरुष–स्त्री के शुक्र तथा रज कीटों का नाश कर देता है ।

अधिक पान खाने से भूख कम हो जाती है । पान खाने वालों की पानी से ही तृप्ति हो जाती है । पान का घातक प्रभाव दाँतों पर होता है । सुपारी, चूना, कत्था, जर्दा इत्यादि के सूक्ष्म कण यत्र–तत्र मसूड़ों या कटे हुए दाँतों के छिद्रों में एकत्रित हो जाते हैं । ये मसूड़ों को काला तथा दाँतों की जड़ों को खोखला बना देते हैं । दाँतों में कीड़े लग जाते हैं और प्रायः पायरिया नामक घातक रोग उत्पन्न हो जाता है । दाँतों के इतने अस्पताल, देखने से ज्ञात होता है कि तीस–चालीस वर्ष की अवस्था में ही आधुनिक बाबुओं के दाँत गिर जाते या खोखले होकर अनेक बीमारियों की सृष्टि करते हैं ।

सौ में से नब्बे या इससे भी अधिक लोगों के दाँत गिरने का कारण उनका पान का बहुत अधिक व्यवहार ही है । पान के रेशे सुपाड़ी के बारीक टुकड़े और चूना जाकर दाँतों के बीच में फँस जाते हैं । समय पाकर ये इतने अधिक हो जाते हैं कि दाँतों पर जोर डालकर उनके बीच संधि को बढ़ा देते हैं इनको हटाने के लिए जीभ सदा दातों के बीच में लगी रहती

है । कुछ समय पश्चात् मसूड़ों में सूजन हो जाती है और उनके भीतर पीव उत्पन्न हो जाती है । दाँतों में असह्य पीड़ा होती है और कुछ समय पश्चात् जव उनकी जड़ की नसें आदि भलीभाँति नष्ट हो जाती हैं, तो वे गिर पड़ते हैं । पान का व्यसन दाँतों का अन्त कर देता है । लोग बिना दाँत के भोजन को भलीभाँति न कुचल सकने के कारण उसे वैसे ही निगल जाते हैं । अन्त में दाँतों का कार्य उदर को करना पड़ता है और वह भी कुछ समय पश्चात् निर्बल हो जाता है । भोजन भलीभाँति नहीं पचता और मनुष्य निर्बल होते–होते अन्त में पान के व्यसन के कारण काल के गाल में पहुँचता है ।

पान खाना अशिष्टता, ओछापन तथा कामोत्तेजक स्वभाव का द्योतक है । पान की दुकान पर खड़े होकर पान खाना असभ्य, वासनाप्रिय, दिखावटी, अस्थिरता, लोलुपता को स्पष्ट करता है । मनुष्य का पतन प्रायः पान से ही प्रारम्भ होता है । वह इसे साधारण–सा व्यसन मान कर हँसी–हँसी में आरम्भ करता है किन्तु धीरे–धीरे यह आदत का एक अंग बनता है, तम्बाकू खाने को तवियत करती है, फिर सिगरेट प्रारम्भ होती है, अन्त में मदिरा और व्यभिचार तक हद पहुँच जाती है । अतः चतुर व्यक्ति को इस व्यसन से दूर ही रहना उत्तम है । सुपारी का भी शौक बुरा है । इससे खुश्की रहती है, दाँतों पर अनावश्यक बोझ पड़ता है, कुछ चबाये बिना मन नहीं मानता, मन एकाग्र नहीं हो पाता और चंचलता बढ़ती रहती है ।

सभ्यता का विष चाय

चाय एवं काफी सभ्य संसार में पनपने वाले मादक पदार्थ हैं । सभ्य जगत ने और नशीली चीजों की तरह इन्हें भी अपना लिया है । वास्तव में ये दोनों जीवनी शक्ति का ह्रास करते हैं । इनके प्रयोग से शरीर से निकलने वाले कारबोलिक ऐसिड का परिणाम बढ़ जाता है ।

प्रथम हानि पाचन शक्ति का ह्रास है । बदहजमी, भूख की कमी, अपच में चाय बड़ी सहायक होती है । सर विलियम रावर्ट लिखते हैं–"थोड़ी मात्रा में भी चाय और काफी का सेवन करने से हमारे शरीर के पाचनरस कमजोर हो जाते हैं, जिससे अन्न के पौष्टिक तत्वों के सत्वों को हमारा शरीर नहीं खींच सकता, दूसरे शब्दों में यही अग्निमांद्य अथवा अजीर्ण होता है ।"

दाँतों के रोग में वृद्धि का एक कारण गर्म–गर्म चाय का व्यवहार ही है । गर्म पानी लगने से दाँतों की जड़ें निर्वल पड़ जाती हैं । देखने में दाँत काले मैले गन्दगी से भरे हुए दिखाई देने लगते हैं ।

चाय क्षणिक उत्तेजना देती है । उत्तेजना समाप्त होने के पश्चात् मनुष्यों को स्वाभाविक शक्ति कम मालूम होने लगती है । यह शक्ति बढ़ाती नहीं, पुरानी शक्ति को क्षण भर के लिए उत्तेजित मात्र कर देती है । मस्तिष्क में रक्त का संचालन अधिक हो जाने से उसमें नई स्फूर्ति–सी आ जाती है । चाय या काफी पीने वालों को कोई न कोई उत्तेजना अवश्य चाहिए । बिना उस उत्तेजना के वे कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं कर पाते । प्रायः देखा जाता है कि लोग चाय का प्याला पीते रहते हैं, तभी तक उनका मन कार्य में लगता है, जहाँ चाय समाप्त हुई कि कार्य करने की प्रवृत्ति नहीं रहती । चाय सिगरेट जैसी आदत बन जाती है ।

चाय से सर में दर्द बना रहता है । लोगों में यह भ्रान्ति–मूलक धारणा वैठ गई है कि चाय से भोजन हजम हो जाता है । वास्तव में, इससे उलटे पाचन क्रिया में व्यवधान उपस्थित हो जाता है । दिल की धड़कन की शिकायत बढ़ जाती है और अंग भारी रहते हैं ।

अनेक गण्यमान्य चिकित्सकों का कथन है कि चाय और काफी ह्दय के कार्य को बढ़ा देती हैं । फेंफड़ों को बहुत अधिक कार्वोलिक एसिड गैस वाहर निकालना पड़ता है, शरीर में उष्णता की न्यूनता हो जाती है तथा गुर्दों के कार्य में अभिवृद्धि हो जाती है । यदि चाय तथा काफी में कहवाइन (कड़ुवा विष) का अंश बहुत अधिक रहता है तो मनुष्य का जी मचिलाता है, बहुत चक्कर आते है और अन्त में मनुष्य बेहोश हो जाता है । अधिक तेज काली–काली कहवाइन विष से भरी हुई चाय से मनुष्य मर भी सकता है ।

चाय में दो प्रकार के विषैले पदार्थों का अस्तित्व है–(१) टेनिन (२) कहवाइन । चाय पीते समय हम जो कसैला–कसैला स्वाद अनुभव करते हैं, वह टेनिन है तथा शरीर के लिए हानिकर है । यह चमड़े का तनाव बढ़ा देता है । जब यह मानव शरीर के भीतर प्रविष्ट होता है, तो आमाशय की झिल्ली को अनुचित तनाव की स्थिति में ला देता है । इससे आमाशय में भोजन का परिपाक सहज में नहीं होता, न इसका पोषण झिल्ली कर सकती है । कहवाइन एक प्रकार का उत्तेजक है, जो मस्तिष्क को

उत्तेजित करता है। चाय का पेपीन नामक विष भी टेनिन जैसा ही दूषित है।

शारीरिक हानि के विचार से शराब और चाय एक ही प्रकार के हैं, अन्तर मँहगी और सस्ती का है। शराब मदहोश बनाकर अल्पकाल के लिए दुःख हरती है, किन्तु चाय उत्तेजना देती और नींद हरती है। अमूल्य जीवन तथा शरीर के स्वास्थ्य को नष्ट करने में यह शराब से कम नहीं है क्योंकि यह उससे सस्ती है और इसका प्रचार स्थान–स्थान पर है। क्षुधा नष्ट हो जाती है तथा चाय के अतिरिक्त और किसी प्रकार की इच्छा नहीं रह जाती। हृदय की गति निर्बल पड़ जाती है। इसके बिना मन खिन्न, चिड़चिड़ा और मस्तिष्क कार्य रहित–सा रहता है।

भारत के प्रसिद्ध डॉ. गोपाल भास्कर गडबुल लिखते हैं कि कान तथा अन्य ज्ञान इन्द्रियों पर इसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। कुछ दिनों में पक्षाघात (लकवा) बहरापन आदि रोग होते हैं। जो व्यक्ति चाय पीते हैं, उनके दिमाग की नसें ढीली पड़ जाती हैं और कानों में साँय–साँय की ध्वनि आने लगती है। स्त्रियाँ जो मनुष्यों की अपेक्षा अधिक निर्बल होती हैं, चाय की अभ्यासी बनकर रोगों से अधिक ग्रस्त हो जाती हैं।

कुछ डाक्टरों का कथन है कि चाय काफी के सेवन से एक नया रोग उत्पन्न हुआ है–पहले मस्तिष्क में एक प्रकार का वेग उत्पन्न होता है, चेहरे का रंग पीत वर्ण हो जाता है किन्तु चाय पीने वाला उसकी परवाह नहीं करता। कुछ समय पश्चात् आन्तरिक एवं बाह्य कष्ट प्रकट होने लगता है। चित्त (स्वभाव) शुष्क और मुखाकृति अधिक पीतवर्ण हो जाती है। चाय के कारण एक अन्य रोग जिसे 'चाहरम' कहते हैं, उत्पन्न हो जाता है, जिसमें एक प्रकार की कठिन मूर्च्छा आन्तरिक इन्द्रियों के कार्य शिथिल, हृदय में कम्प और पाचन यन्त्रों में पीड़ा होती है, जिसके फलस्वरूप स्वाभाविक शिथिलता प्रकट होने लगती है। मूत्राशय पर अप्राकृतिक दबाव पड़ कर उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है।

एक विशेषज्ञ लिखते हैं, "चाय का कैफीन कब्ज उत्पन्न करता है। प्रायः देखा जाता है कि चाय के शौकीनों को तब तक टट्टी नहीं उतरती जब तक वे चाय न पीलें। वास्तव में चाय टट्टी नहीं करती। गर्म पानी जो चाय में मिला रहता है, शरीर के अपान वायु को हलका कर देता है और उसी के कारण मल का निस्सरण होता है। चाय पीने वाले उसे चाय का

गुण समझते हैं । केफीन विष दिल की धड़कन को बढ़ा देता है और कभी–कभी तो दिल की धड़कन इतनी बढ़ जाती है कि आदमी मर तक जाता है । इस विष से गठिया आदि बात रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं । गुर्दे पर इसका ऐसा बुरा प्रभाव पड़ता है कि बहुमूत्र की शिकायत शुरू हो जाती है । चक्कर आना, आवाज बदल जाना, रक्त विकार, लकवा लग जाना, वीर्य के अनेक विकार, मूर्छा आना, नींद का कम हो जाना आदि ऐसे दुष्ट रोग हैं जो चाय में रहने वाले साइनोजेन, स्ट्रिनाइन, साइनाइड आदि विषों के कारण उत्पन्न होते हैं ।"

चाय के प्रचार में हमारी दिखावटी अन्धानुकरण करने की दूषित मनोवृत्ति ने विशेष योग प्रदान किया है । ठण्डे मुल्कों के लिए चाय आवश्यक हो सकती है, किन्तु भारत जैसे गर्म देश के लिए यह हानिकर है ।

भाँग, गाँजा और चरस की नाशकारी कुटेब

भाँग और गाँजा भारत के ग्रामों में फैले हुए महारोग हैं, जो निरन्तर भयंकर विनाश कर रहे हैं । दुर्भाग्य का विषय है कि हमारे अपढ़ पिछड़े साधु, वैरागी, भिखारी, पण्डे, पुरोहित लोग भाँग के विशेष शौकीन होते हैं । भगवान शंकर की आड़ लेकर ये लोग निरन्तर भाँग, गाँजे और चरस का प्रयोग करते हैं । हमारा कलंक है कि हम ऐसे साधुओं को घृणा नहीं करते ।

श्रीबैजनाथ महोदय लिखते हैं, 'भाँग, गाँजा, चरस के प्रचारक तो ५६ लाख उत्साही साधु तथा ग्रामों में स्थिति मन्दिर हैं । मन्दिरों और साधुओं द्वारा भक्ति का प्रचार कितना होता है, सो तो भगवान ही जानें किन्तु वे प्रायः भंगड़ियों के अड्डे तो जरूर होते हैं । शाम–सुबह ग्राम के व्यक्ति बाबाजी की धूनी पर और शहरों के सेठिया तथा गुण्डे इत्यादि अपने बाग–बगीचों या शहर के बाहर वाले मन्दिरों में भाँग छानने अथवा सुलफा पीने (गाँजे का दम लगाने) के लिए नियम एवं एक निष्ठापूर्वक एकत्र होते हैं । ये लाखों स्थान दुर्गुणों को बढ़ाने का कार्य कर रहे हैं । तीर्थस्थानों में तो यह बुराई और भी अधिक परिमाण में पाई जाती है । प्रत्येक घाट तथा मन्दिर निश्चित रूप से भाँग का अड्डा होता है ।"

स्मरण रखिए, भाँग, गाँचा, चरस इत्यादि भयंकर विषैले पदार्थ हैं । इनमें प्रवृत्त होने से मानव की वृत्तियाँ पापमय हो जाती हैं, मन उत्तेजना एवं

विकारों से परिपूर्ण हो जाता है । सुश्रुत ने इन्हें कफ और खाँसी वर्द्धक बताया है । भाँग का पौधा विषैला है, जिससे भाँग, गाँजा, चरस तीनों नशीली चीजें तैयार होती हैं । सुश्रुत ने भाँग या गाँजे के पौधे का स्थावर विषों में उल्लेख किया है, और इसकी जड़ को विष माना है । (देखिए सुश्रुत कल्प अध्याय–२)

कुछ चिकित्सकों के अनुसार इन मादक वस्तुओं के प्रयोग से शक्ति क्षीण होती है, नेत्र का रंग सुर्ख पड़ जाता है और सर में चक्कर आने लगते हैं । भाँग पीकर मदहोश हो जाते हैं और भोजन अधिक खाते हैं किन्तु यह तो एक प्रकार की अस्वाभाविक क्षुधा होती है । नशा उतरने पर अपच, पेट का भारीपन, उलटी और पेट के अन्य विकार उत्पन्न होते हैं । गाँजा पीने वालों के दिमाग बहुत जल्दी बिगड़ जाते हैं । भाँग पीने वालों के चित्त की स्थिरता जाती रहती है और उचित–अनुचित का विवेक नहीं रहता । भँगड़ी व्यक्ति सनकी होता है । उसके मन में जैसे ही एक बात उठती है, वह वैसे ही उसे कर बैठता है । ये व्यर्थ के व्यय मनुष्य को पनपने नहीं देते । गरीब मूर्खों की अधिकतर आय इन्हीं अनावश्यक मादक वस्तुओं में नष्ट हुआ करती हैं । भाँग, गाँजा, चरस इत्यादि से मनुष्य की वासना उदीप्त होती है और वह व्यभिचार में प्रवृत्त होता है । ऐसा व्यक्ति व्यापार, उद्यम, कला–कोशल या किसी उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य को करने के योग्य नहीं रह जाता ।

अफीम का घातक दुर्व्यसन

शराब, तमाखू, पान आदि की भाँति अफीम भी प्रचलित है । इसका नशा घातक है और तनिक–सी अधिक मात्रा में लेने से मृत्यु का भय है । श्रीयुत पैटन ने "भारत में अफीम" नामक पुस्तक में इस प्रकार लिखा है –

भारत में बच्चों तक को अफीम दी जाती है । थकावट तथा जाड़े को भगाने के लिए भी उसका उपयोग किया जाता है । किसी बीमारी को रोकने या भगाने के लिए लोग अफीम का सेवन करते हैं और अनेक केवल व्यसन के लिए खाया करते हैं । ये सभी सेवन के तरीके कृत्रिम और अनुचित हैं । बच्चों को देने से वे नशे में पड़े तो रहते हैं किन्तु उनका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है, भूख मारी जाती है, स्वाभाविक चैतन्य शक्ति, उल्लास, उत्साह, प्रसन्नता मारी जाती है । शरीर कृश, दिमाग निर्बल एवं रक्त हीनता हो जाती है । उनकी जीवन शक्ति क्षीण हो जाने से वे जल्दी ही बीमारियों के शिकार बनते जाते हैं । दवाइयों तक का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।

ऐसे बच्चे जब अध्ययन में पड़ते हैं, तो उनमें एकाग्रता और कुशाग्रता का अभाव होता है ।

थकावट और जाड़े से मुक्ति के लिए इसका प्रयोग करना मूर्खता है, क्योंकि इससे कहीं स्वास्थ्यकर वस्तुएँ इसके लिए उपलब्ध हो सकती हैं । क्षण भर नशे में हम यह भूले रह सकते हैं कि हम थके हुए नहीं हैं, किन्तु अफीम का नशा उतरने पर और भी निर्बलता एवं आलस्य घर दबाता है । न दर्द, न थकान, न जाड़ा कोई भी हटते नहीं वरन् यह नशा लाकर रोगों या थकान के वास्तविक लक्षणों को ढँक देती है ।

श्री पेटन के अनुसार अफीमची को (१) कब्ज (२) रक्त की न्यूनता (३) भूख कम लगना (४) हृदय, फेंफड़ों एवं गुर्दों के रोग (५) स्नायुजन्य कमजोरी (६) फुर्तीलेपन का अभाव (७) आलस्य, निद्रा में कमी, चित्त भ्रम, दिवास्वप्न (८) नैतिक भावना की कमजोरी (९) कठोर कार्य से भागना (१०) अविश्वास और शारीरिक निर्बलता उत्पन्न होते हैं । इनके अतिरिक्त जीवन तत्वों को क्षीण करने और शरीर को निस्तेज बनाने में अफीम का प्रमुख हाथ है । पाकाशय निर्बल हो जाने के कारण अफीमची सूखता जाता है ।

मानसिक क्षेत्र में, अफीम के प्रयोग से ज्ञानात्मक शक्तियाँ निर्बल होती हैं । विशेषतः स्मरण शक्ति बिगड़ जाती है । स्नायु और ज्ञान तन्तुओं में रोग लग जाते हैं । कुटेव पड़ जाने से, यदि नियमित समय पर अफीम प्राप्त न हो तो किसी भी कार्य में तबियत नहीं लगती, हाथ–पाँव बेजान से पड़े रहते हैं, क्योंकि अफीम उनकी स्वाभाविक शक्ति को पहले ही नष्ट कर डालती है । अफीम की आदत धीरे–धीरे मनुष्य के शरीर और आत्मा को भी खा जाती है । जिन स्थानों में अफीम खाने या पीने की आदत है, वहाँ का सम्पूर्ण पुरुष वर्ग निकम्मा हो जाता है ।

कोकेन का घातक व्यसन

कोकेन में अन्य घातक पदार्थों के साथ–साथ भयंकर विष होते हैं, जो डॉ. बेनेट के मतानुसार अँतड़ियों, श्वाँस प्रणाली, ग्रन्थि प्रणाली और रक्त प्रवाह प्रणाली पर घातक प्रभाव डालते हैं । इसका उपयोग प्रायः उच्च वर्ग के व्यक्ति करते हैं, जो सामाजिक बन्धनों के कारण शराब या अफीम का खुला उपयोग नहीं कर पाते । भारत में वेश्याओं के यहाँ इसकी अधिक खपत

है । व्यभिचारी व्यक्ति प्रायः इसका प्रयोग क्षणिक उत्तेजना के लिए किया करते हैं । इसके नशे में वे सत–असत विवेक बुद्धि को भूल जाते हैं ।

कोकेन के दुष्परिणाम बड़े भयंकर हैं, इससे पाकाशय के स्नायु तथा ज्ञान तन्तु अकर्मण्य हो जाते हैं । फलतः दो–दो, तीन–तीन दिन क्षुधा प्रतीत नहीं होती । शरीर कृश हो जाता है । आरम्भ में कोकेन के प्रयोग से ज्ञान तन्तु और स्नायु के उद्‌गम स्थान पर कुछ झञ्झनाहट और वेग प्रतीत होता है, परन्तु यह आवेग आध घण्टे से अधिक शेष नहीं रहता । उतार प्रारम्भ होने पर हृदय डूबता–सा मालूम होता है । सम्पूर्ण शरीर पर आलस्य एवं नैराश्य की भावना छा जाती है । एक प्रकार का शैथिल्य एवं शारीरिक निर्बलता सर्वत्र छा जाती है ।

कोकेन खाने की आदत अन्य मादक वस्तुओं की अपेक्षा अधिक लुभावनी है, परन्तु बड़ी भयानक भी है । इससे शारीरिक, मानसिक और आचारिक निर्बलता उत्पन्न हो जाती है । थोड़े समय तक इसका अभ्यास करने से इसके खाने और प्रभाव देखने की एक अनियंत्रित इच्छा प्रकट होने लगती है, सो किसी प्रकार तृप्त नहीं हो पाती और बिना जान लिए नहीं शान्त होती । कोकेन वास्तव में ईश्वरीय कोप स्वरूप है जिसके फन्दे में फँसने से अकथनीय दुर्गति होती है ।

हमारी सभ्यता का कलंक–नैतिक चरित्र–हीनता

आज की दुनियाँ में शराब, गाँजा, सिगरेट, पान इत्यादि तो गजब ढा ही रहे हैं, किन्तु उससे भी महा भयंकर समस्या मानसिक और नैतिक चरित्र–हीनता की है । नशा पीकर बुद्धि विकार ग्रस्त होती है तथा मनुष्य मानसिक व्यभिचार में प्रवृत्त होता है, वासना मूलक कल्पनाओं के वायुमण्डल में फँसा रहने से प्रत्यक्ष व्यभिचार की ओर दुष्प्रवृत्ति होती है । व्यभिचार हमारी सभ्यता का कलंक है, जिस पर जितना लिखा जाय कम है । व्यभिचार एक ऐसी सामाजिक बुराई है, जिससे मनुष्य का शारीरिक, सामाजिक और नैतिक पतन होता है । परिवारों का धन, सम्पदा, स्वास्थ्य नष्ट हो जाते हैं, बड़े–बड़े राष्ट्र विस्मृति के गर्त में डूब जाते हैं । परिताप का विषय है, नाना रूपों में फैलकर व्यभिचार की महाव्याधि हमारे नागरिकों, समाज, गार्हस्थ्य एवं राष्ट्रीय जीवन का अधःपतन कर रही है । इसके परिणामों का उल्लेख करते हुए हृदय काँप जाता है ।

आज की पत्र–पत्रिकाओं, समाचार पत्रों में छपने वाले विज्ञापनों को देखिए, आज के समाज का आइना आपके समक्ष आ जायगा । नामर्दी, नपुंसकता, वीर्यपात, स्वप्नदोष, गर्भपात करने, स्तम्भन वृद्धि, वर्थ कन्ट्रोल के साधन, नग्न तस्वीरें, सौन्दर्य वृद्धि, सिनेमा संवंधी अनेक प्रकार के दूषित विज्ञापन पतनोन्मुख समाज का खाका हमारे सामने प्रस्तुत कर देते हैं ।

सिनेमा विनाश या मनोरंजन

सभ्यता के आवरण में जिस मनोरंजन ने सबसे अधिक कामुकता, अनैतिकता, व्यभिचार की अभिवृद्ध की है, वह है सिनेमा तथा हमारे गन्दे विकारों को उत्तेजित करने वाली फिल्म, उनकी अर्द्धनग्न तस्वीरें और गन्दे गाने । अमेरिकन फिल्मों के अनुकरण पर हमारे यहाँ ऐसे चित्रों की सृष्टि वृहत् संख्या में हो रही है, जिनमें चुम्बन, आलिंगन आदि कुचेष्टाओं एवं उत्तेजक गीतों, प्रेम सम्बन्धी वार्तालापों की भरमार है । रेडियो द्वारा गन्दे संगीत से कामुकता का प्रचार हम सहन कर लेते हैं और घर–घर में बच्चे–बूढ़े, युवक–युवतियाँ गन्दे गीत माता–पिताओं के सामने सुनते रहते हैं । फिल्मी संगीत इतने निम्न स्तर का होता है कि उसके उद्धरण देना भी महा पाप है । जहाँ बालकों को रामायण, गीता, तुलसी, सूर, कबीर नानक के सुरुचिपूर्ण भजन याद होने चाहिए, वहाँ हमें यह देखकर नतमस्तक होना पड़ जाना पड़ता है कि अबोध बालक फरमाइशी रिकार्डों के वेश्याओं के गन्दे अश्लील गाने स्वच्छन्दता पूर्वक गाते फिरते हैं । न कोई उन्हें रोकता है, न उन्हें मना करता है । ज्यों–ज्यों यौवन की उत्ताल तरंगें उनके हृदय में उठती हैं, इन गीतों तथा फिल्मों के गन्दे स्थलों की कुत्सित कल्पनाएँ उन्हें अनावश्यक रूप से उत्तेजित कर देती हैं । वे व्यभिचार की ओर प्रवृत्त होते हैं । समाज में व्यभिचार फैलाते हैं, गन्दे अनैतिक प्रेम सम्बन्ध स्थापित करते हैं, गलियों में लगे हुए चित्र, लिखी हुई अश्लील गालियाँ, कुत्सित प्रदर्शन, स्त्रियों को कामुकता की दृष्टि से देखना प्रत्यक्ष विष तुल्य है । उगती पीढ़ी के लिए यह कामान्धता खतरनाक है । बचपन के गन्दे दूषित संस्कार हमारे राष्ट्र को कामुक और चरित्रहीन बना देंगे ।

सिनेमा से लोगों ने चोरी की नई–नई कलाएँ सीखीं, डाके डालने सीखे, शराब पीना सीखा, निर्लज्जता सीखी और भीषण व्यभिचार सीखा । सिनेमा के कारण हमारे युवक–युवतियों में किस प्रकार स्वेच्छाचार बढ़ रहा

है, इसके कई सच्चे उदाहरण तो हमारे सामने हैं । पता नहीं लाखों–करोड़ों कितने तरुण–तरुणियों पर इसका जहरीला असर हुआ है । फिर भी हम इसे मनोरंजन मानते हैं । समाज के इस पाप को दूर करना चाहिए, अन्यथा अनैतिकता, व्यभिचार स्वच्छन्दता, तमाम सामाजिक मर्यादाओं का अतिक्रमण कर देंगी । सिनेमा ने समाज में खुले आम अश्लीलता, गन्दगी, कुचेष्टाओं, व्यभिचार, घृणित यौन सम्बन्ध, शराबखोरी, फैशन परस्ती, कुविचारों की वृद्धि की है । यदि गन्दे फिल्म ऐसे ही चलते रहे तो राष्ट्रीय चरित्र का और भी खोखलापन, कमजोरी और ढीलापन अवश्यम्भावी है । यदि हमारे युवक–युवतियाँ अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों के पहनावे, श्रृंगार, मेकअप, फैशन, पैण्ट, बुशशर्ट, साड़ियों का अन्धानुकरण करते रहे, तो असंयमित वासना के द्वार खुले रहेंगे । गन्दे फिल्म निरन्तर हमारे युवकों को मानसिक व्यभिचार की ओर खींच रहे हैं । उनका मन निरन्तर अभिनेत्रियों के रूप, सौन्दर्य, फैशन और नाज–नखरों में भँवरे की तरह अटका रहता है । इन गन्दी कल्पनाओं को समीप के स्थानों में प्रेमिका खोज कर कुचेष्टाओं से चरितार्थ करते हैं । अश्लीलता के इस प्रचार पर सरकार द्वारा कड़ा नियन्त्राण लगना चाहिए ।

अश्लील उत्तेजक विचार

आखिर शहर में रोग क्यों न बढ़े ? इस प्रश्न का विश्लेषण करते हुए आचार्य विनोवा भावे लिखते हैं, "शहर के लोग ठीक व्यायाम नहीं करते, घरों में बैठे रहते हैं । उनको अच्छी हवा नहीं मिलती । अधिक कपड़े पहिनते हैं जिससे सूर्य की किरणों से वंचित हरते हैं । घर भी ऐसा बनाते हैं जिसमें प्रकृति से दूर रहना पड़ता है, काम भी ऐसा जिसमें कुदरत से कोई प्रयोजन नहीं । फिर रात को जागेंगे, सिनेमा देखेंगे, खराव कितावें पढ़ेंगे । इस प्रकार अपने शरीर और मन को विकृत करते रहते हैं, तो रोग बढ़ेगा ही ।"

अश्लील और गन्दा विषय–भोग सम्वन्धी साहित्य वैसा ही घातक है, जैसा भले चगे व्यक्ति के लिए विष । नयी उमर में जब मनुष्य को जीवन और जगत का अनुभव नहीं होता, वह अश्लीलता की ओर प्रवृत्त रहता है । यौवन के उन्माद की आँधी में गन्दा साहित्य सोई हुई काम–वृत्तियों को कच्ची आयु में उद्दीप्त कर देता है । आज जिधर देखो उधर उत्तेजक चित्र,

वासना संबंधी हलके प्रेम की कहानियाँ, अश्लील उपन्यास, विज्ञापन इत्यादि छप रहे हैं । सिनेमा ने तो गजब का अन्धेर मचा रखा है । आज की फिल्में हलके रोमांस से परिपूर्ण प्रेम कहानियों को लेकर निर्मित होती हैं । अनुभवहीन, यौवन की मस्ती में पागल चढ़ती उम्र के नवयुवक इसी मिथ्या जगत को सत्य मानकर स्त्रियों को आकर्षित करने की कुचेष्टा करते हैं । इससे समाज का नैतिक स्तर गिर जाता है और व्यवस्था टूट जाती है । यदि समाज में गन्दे साहित्य पर रोक न की जायगी तो निश्चय ही चारों ओर स्वच्छन्दता और विकार का साम्राज्य फैल जायगा, स्त्री–पुरुष तेजहीन, लम्पट, और कमजोर हो जायेंगे तथा उनसे ऊँचे पारमार्थिक कार्य न हो सकेंगे ।

गन्दा साहित्य नीति, धर्म का शत्रु है । यह पशुत्व की अभिवृद्धि करता है । समाज में इससे आध्यात्मिकता का लेश भी न रहने पायेगा । आवश्यकता इस बात की है कि जनता को इस गन्दे साहित्य की दुष्टताओं, रोमांस की गन्दी करतूतों, मानसिक व्यभिचार की त्रुटियों के प्रति सावधान कर दिया जाय ।

विचार एक प्रचण्ड शक्ति है । मन में जब कोई गन्दा अनर्थकारी विचार प्रविष्ट हो जाता है, तो वासना उद्दीप्त हो जाती है । मन गन्दगी, अश्लीलता, वासना की ओर नियंत्रण कम होते ही दौड़ जाता है । जो व्यक्ति एक बार कोई प्रेम संबंधित फिल्म, उत्तेजक दृश्य या नग्न चित्र को देख लेता है, उसकी स्मृति पर उसका एक छोटा–सा स्मृति चित्र अंकित हो जाता है । यह गुप्त मन में बना रहता है और रात्रि में स्वप्नों के रूप में स्मृतिपटल पर आकर व्यक्ति को बड़ा परेशान और उद्विग्न करता है । बढ़ती हुई वासना, अदृश्य इच्छाओं, विषयी वायुमण्डल की सृष्टि करता है । ऐसे माता–पिता के संसर्ग अथवा इस तरह के वातावरण में विकसित होने वाले बच्चे शीघ्र ही विषयी हो जाते हैं ।

माता–पिता–शिक्षक इत्यादि का पुनीत कर्तव्य है कि वे अपने बच्चे को स्वस्थ, सात्विक, आध्यात्मिक शक्ति, बल, पौरुष, सद्गुणों को विकसित करने वाला साहित्य पढ़ने के लिए दें । यह ध्यान रखें कि लुक–छिप कर बच्चे बाजार में बिकने वाली सस्ती गन्दे किस्से कहानियों की पुस्तकें न खरीदें । फिल्मों से संबंधित गन्दी पत्र–पत्रिकाएँ फिल्मी अभिनेत्रियों के अर्द्धनग्न चित्र न लिए फिरें, सिनेमा के गन्दे गाने न गाते फिरें ।

यदि आप स्वयं युवक हैं, तो मन पर कड़ा निमंत्रण रखें अन्यथा पतन की कोई मर्यादा नहीं है । वासना की ओर लुब्ध नेत्रों से देखने वाला किसी न किसी दिन व्यभिचारी बनेगा और मान प्रतिष्ठा का क्षय होगा । अपने आपको ऐसी पुस्तकों के वातावरण में रखिए जिससे आपकी सर्वोच्च शक्तियों के विकास में सहायता प्राप्त हो, श्रम संकल्प दृढ़ हो, व्यायाम, दीर्घायु, पौरुष, कीर्ति, भजन–पूजन, आध्यात्मिक या सांसारिक उन्नति होती रहे ।

खाली मन शैतान की दुकान है । मन को कोई विषय ऐसा चाहिए जिस पर वह चिन्तन, मनन, विचार इत्यादि शक्तियाँ एकाग्र कर सके । उसे चिन्तन के लिए आपको कोई न कोई श्रेष्ठ या निंद्य विषय देना होगा । उत्तम यह है कि आप उसे विचारने के लिए शुभ, सात्विक, उच्चकोटि के विषय दें । उत्तम बातें सोचें । देश में फैले हुए नाना विषयों को सोचें तथा उन पर निज सम्मति प्रकट करें । गन्दे साहित्य से बचने का श्रेष्ठ उपाय उच्चकोटि के साहित्य में संलग्न रहना है । शुभ चिन्तन, सत्संग, सद्ग्रन्थावलोकन में व्यस्त रहने से हम इर्द–गिर्द के अश्लील साहित्य से बच सकते हैं ।

यह विषय इतना गन्दा है कि इसकी चर्चा मात्र से ह्रदय काँप उठता है । इसके फल से समाज में व्यभिचार के गुप्त एवं प्रत्यक्ष पाप की कहानी ह्रदय दहला देने वाली है । व्यभिचार के साधन आज जितने सस्ते हैं, पहिले कभी नहीं रहे । बड़े–बड़े शहरों में व्यभिचार के अड्डे पनप रहे हैं, जहाँ देश के नवयुवक यौवन, तेज, स्वास्थ्य और पौरुष को नष्ट कर रहे हैं । समाज में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं जो व्यभिचार को प्रोत्साहन देते हैं या स्वयं एजेण्ट का निंद्य कार्य करते रहते हैं । व्यभिचार मनुष्य के द्वारा किया हुआ सबसे घिनौना पाप कर्म है, जिसकी सजा हमें इसी जन्म में मिल जाती है ।

दुराचार से होने वाले रोगों की संख्या कधिक है । वीर्यपात से गर्मी, सुजाक तथा मूत्र नलिका सम्बन्धी अनेक घृणित रोग उत्पन्न होते हैं, जिनकी पीड़ा नर्क तुल्य है । इनके अतिरिक्त वेश्यागमन से शरीर अशक्त होकर उसमें सिर दर्द, बदहजमी, रीढ़ की बीमारी, मिर्गी, कमजोर आँखें, ह्रदय की धड़कन का बढ़ जाना, पसलियों का दर्द, बहुमूत्र, पक्षाघात, वीर्यपात, शीघ्र पतन, प्रेमह, नपुंसकता, क्षय, पागलपन इत्यादि महाभयंकर व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं । जीवनी शक्ति क्रमशः क्षय होती रहती है । व्यभिचारी का समाज में सर्वत्र

तिरस्कार होता है, उसका उच्च व्यक्तियों में जाना निकलना आदि बन्द हो जाता है ।

इस प्रकार के जघन्य आचरण के क्या कारण हैं ? उत्तर में कहा जा सकता है कि हमारी सदोश विवाह पद्धति, स्त्रियों का वास्तविक गौरव न जानना, पौरुष की मिथ्या कल्पना, परदा, गरीबी, अन्ध धार्मिकता, हमारी जड़वादिता, संकुचितता, कामोत्तेजना तथा अनिष्टकर वातावरण व्यभिचार की वृद्धि में सहायक हो रहा है । भक्ति के नाम पर मठ–मन्दिरों में भली–भाँति स्त्रियों पर पापाचार किया जाता है । जो लोग विवाहित हैं वे पत्नी से अतिसहवास में लिप्त होकर कामुक और भ्रष्ट बनकर निस्तेज वीर्यहीन बन रहे हैं । व्यभिचारी पुरुष का दाम्पत्य जीवन कपट, धूर्तता, मायाचार और छल से परिपूर्ण होता है । वह अवसर पड़ने पर अपनी पत्नी तक को धोखा देता है ।

इस प्रकार कुकर्म प्रायः चोरी, भय, लज्जा और पाप की झिझक के साथ किया जाता है । बाहर के स्त्री पुरुषों से यौन सम्बन्ध स्थापित करने के पाप–प्रपंच उसके मन में उठा करते हैं । यह पाप वृत्तियाँ कुछ समय लगातार अभ्यास में आते रहने पर मनुष्य के मन में गहरी उतर जाती हैं और जड़ जमा लेती हैं । फिर उसके स्वभाव में यौन सम्बन्धी बातों में दिलचस्पी, गन्दे शब्दों का प्रयोग, बात–बात में गाली देना, गुह्य अंगों का पुनः–पुनः स्पर्श, पराई स्त्रियों को वासनात्मक कुदृष्टि से देखना, मन में गन्दे विचारों व पापमयी कल्पनाओं के कारण खींचतान, अस्थिरता, आकर्षण–विकर्षण निरन्तर चला करते हैं । यही कारण है कि व्यभिचारी व्यक्ति प्रायः चोर, निर्लज्ज, दुस्साहसी, कायर, झूठे और ठग होते हैं । अपने व्यापार तथा व्यवहार में अपनी इन कुप्रवृत्तियों का परिचय देते रहते हैं । लोंगों के मन में उनके लिए विश्वास, प्रतिष्ठा, आदर की भावना नहीं रहती, सच्चा सहयोग नहीं मिलता और फलस्वरूप जीवन–विकास के महत्वपूर्ण मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं ।

व्यभिचार की पापपूर्ण वृत्तियों के मन में जम जाने से अन्तःकरण कलुषित हो जाता है । मनुष्य की प्रतिष्ठा एवं विश्वसनीयता स्वयं अपनी ही नजरों में कम हो जाती है तथा प्रत्येक क्षेत्र में सच्ची मैत्री या सहयोग भावना का अभाव मिलता है । यह सब बातें नरक की दारुण यातना के समान कष्टकर हैं । व्यभिचारी को निज कुकर्म का दुष्परिणाम इसी जीवन में उपर्युक्त प्रकारों से नित्य ही भुगतना पड़ता है ।

ऐसे नीच प्रवृत्ति के पुरुषों के सम्पर्क से उनके अनेक प्रकार के रोग और दोष स्त्री की निर्बल अन्तःचेतना को विकृत कर देते हैं। व्यभिचारी पुरुष की लम्पटता, वासना, घृणा, ईर्ष्या, उत्तेजना तथा स्त्री के नाना प्रकार के गुण, कर्म, स्वभाव परस्पर टकराते हैं, जिससे उसकी मनोभूमि विकृत हो जाती है।

दुराचारिणी स्त्रियों का स्वभाव भी दूषित हो जाता है। उनमें चिड़चिड़ापन, झुँझलाहट, घबराहट, आवेश, अस्थिरता, रूठना, काम लोलुपता, असत्य, छल, अतृप्ति आदि दुर्गुणों की मात्रा में अभिवृद्धि हो जाती है। उनके शरीर में शिरदर्द, कब्ज, पीठ में दर्द, खुश्की, प्यास, अनिद्रा, थकावट, दुस्वप्न, दुर्गन्धि आदि विकार बढ़ने लगते हैं। वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्रियों का सान्निध्य अनिष्टकर होता है। पाठको ! व्यभिचार की ओर आकर्षित मत होना। यह जितना ही लुभावना है उतना ही दुःखदायी है। अग्नि की तरह यह सुनहरा–सुनहरा चमकता है, पर जरा–सी भूल से यह विनाश करने वाला है। तनिक–सा इसकी लपेट में आने पर यह विनाश करने वाला है। इस सर्वनाश के मार्ग पर मत चलना, क्योंकि इसकी ओर जिसने भी कदम बढ़ाया है, उसे भारी रोग, क्षति और विपत्ति का सामना करते हुए हाथ मल–मल कर पछताना पड़ा है। व्यभिचार सबसे बड़ा विश्वासघात है। क्योंकि किसी स्त्री के समीप तुम तभी पहुँच पाते हो, जब उसके घर वाले तुम्हारा विश्वास करते हैं। ऐसा कौन है, जो किसी अपरिचित के गृह में निधड़क पदार्पण कर सके और उससे मनचाही बातचीत करे। अतः पाप से डरो और संसार तथा अपनी लोक–लाज–मर्यादा का ध्यान रखो। क्या व्यभिचार से उत्पन्न होने वाले पाप, घृणा, बदनामी, कलंक, रोगों से तुम्हें तनिक भी भय नहीं ?

सद्ग्रहस्थ वह है जो पड़ौसी की स्त्री के रूप में अपनी पुत्री या माता की छाया देखता है। वीर वह है जो पराई स्त्री को पाप की दृष्टि से नहीं देखता। स्वर्ग के वैभव का अधिकारी वह है, जो स्त्रियों को माता, बहिन और पुत्री समझता हुआ उनके चरणों में प्रणाम करता है। व्यभिचार जैसे घृणित पाप से सावधान ! सावधान !!

अभक्ष पदार्थों का सेवन

माँस विष तो नहीं है, किन्तु इससे भी अनेक दोष उत्पन्न होते हैं, जो शरीर और स्वास्थ्य के लिए घातक हैं । अधिक माँस खाने वालों को बदहजमी, पेट का भारीपन, कब्ज इत्यादि की शिकायतें उत्पन्न हो जाती हैं । वैसे भी माँस उत्तेजक पदार्थ है और जब उसकी आदत पड़ जाती है, तो उसके बिना शरीर में भारीपन और आलस्य रहता है तथा किसी काम में मन नहीं लगता । अनेक बार रोगी पशुओं का माँस खाने में आ जाता है, जिससे मनुष्य को भी वे रोग पैदा हो जाते हैं ।

कितने ही व्यक्ति माँस भक्षण को मोटे-ताजे स्वस्थ रहने का उपाय बताकर विवाद करते हैं । ऐसे माँसाहारी उन त्रुटियों को नही जानते जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है । संसार में बड़े-बड़े बलशालियों का भोजन दूध, शाक, अनाज, तरकारियाँ, मेवे इत्यादि रहे हैं ।

उदाहरण के निमित्त संसार प्रसिद्ध विचारक, नाटककार, जार्ज बर्नाडशॉ को ही देखिए । शॉ के डॉक्टरों ने कहा था कि माँस बिना तुम मर जाओगे । उन्होंने निर्भीकतापूर्वक उत्तर दिया-"अच्छा ! हमें केवल प्रयोग करके ही देखना चाहिए । यदि मैं जीवित रहा तो आशा करता हूँ कि आप भी निरामिष भोजी हो जायेंगे ।" शॉ दीर्घकाल तक शाक-तरकारियों और फलों पर जीवित रहे । मुनि तथा योगी जन सदा माँस से दूर रहे और दीर्घकाल तक स्वास्थ्य का आनन्द लेते रहे । फिर हम क्यों माँस खाएँ ?

अण्डे खाना स्वास्थ्य के लिए हितकारी नहीं

आजकल देशी-विदेशी सज्जन शक्ति के लिए अण्डे खाने की सलाह दिया करते हैं । उनकी राय में अण्डे के समान पोषण करने वाला अन्य कोई पदार्थ नहीं है । कुछ महानुभाव अण्डे खाने में ज़ीव हत्या नहीं समझते, फल से उसकी तुलना किया करते हैं । वास्तव में अण्डा हितकारी नहीं है, इस सम्बन्ध में कुछ विलायती डाक्टरों ने कहा है कि मुर्गी के मांस और अण्डे में एक प्रकार की विषैली एल्व्यूमिन पायी जाती है, जो जिगर और अंतड़ियों को खराब करती है और बहुत ही हानिकारक है । अण्डे में जरदी होती है, उसमें नमक, चूना लोहा और विटैमिन सभी पदार्थ रहते हैं । यह पदार्थ

बच्चों के पोषण के लिए भगवान ने भर दिये हैं । बहुत से लोगों ने यह समझ लिया है कि यह चीजें दूध की तरह खाने की हैं किन्तु यह उनकी भूल है ।

अण्डे में जो प्रोटीन होता है, वह दूध के प्रोटीन से कम दर्जे का है, क्योंकि उसके पाचन में बड़ी कठिनाइयाँ आ पड़ती हैं । अधिकतर तो वह सड़कर खाने के योग्य न रहकर हानिकारक भी हो जाती है । दूध तो रखा रहने पर जम जाता है और खट्टा भी हो जाता है, परन्तु अण्डा खाने में खराब मालूम होता है और हानिकारक हो जाता है । इसके विपरीत खट्टा या जमाया हुआ दूध अधिकांश लोगों को ताजे दूध की अपेक्षा अधिक रुचिकर और सुपाच्य हो जाता है । दूध का यह गुण मिठास के कारण है, जो अण्डे में होता ही नहीं । सात्विक भोजन के साथ आधा सेर दूध, अण्डे और मांस के बिना ही प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में पहुँच देता है ।

योरोपीय देशों में मक्खन निकालने के पश्चात् मक्खनियाँ दूध प्रायः जानवरों को खिलाया या फैंक दिया जाता है । यदि यंही दूध मनुष्य के खाने के काम में काम में लिया जाय तो इस देश के लिए माँस से अधिक लाभदायक होगा । नौ औंस (साड़े चार छटाँक) मक्खनियाँ दूध शरीर में इतना चूना तथा हड्डियाँ बनाने वाली सामग्री उत्पन्न कर देता है जितना एक दर्जन अण्डे नहीं कर पाते ।

अण्डे के खाने से पाचन तंत्र में सड़न उत्पन्न हो जाती है । इस सड़न से एक प्रकार के नशे-सी स्थिति पैदा होती है । इससे जी मिचलाता है, सर दर्द, मुँह में दुर्गन्धि आना तथा दूसरी ऐसी अन्य बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं । इसके विपरीत दूध, बादाम, मूँगफली, आदि में अण्डे से अधिक प्रोटीन होता है । जितना दूध बादाम आदि के प्रोटीन खाने पर आमाशय में पाचक रस बनता है, उतना ही अण्डे के प्रोटीन से नहीं बनता । अण्डे की कच्ची सफेदी पर पाचक रसों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और दूसरे भोजनों के पचने में भी रुकावट उत्पन्न होती है ।

बेटल क्रीक सिनेटोरियम के सुपरिन्टेन्डेन्ट जान हरवे लाग साहब लिखते हैं कि-"मांसाहारियों के सब बहाने सब प्रकार से एक-एक करके सभी लोप होते जा रहे हैं । यथार्थ में वर्तमान समय में उनका किसी प्रकार का कोई भी बहाना किसी भी दशा में स्वीकार करने के योग्य नहीं है जबकि अच्छे पौष्टिक और सात्विक पदार्थ खाने को मिल रहे हैं ।"

भोजन स्वाद के लिए या पेट भरने के लिए ही नहीं है वरन् उसका उद्देश्य शरीर को ऐसे पोषक पदार्थ देना है जो निरोगता स्फूर्ति एवं दीर्घजीवन प्रदान करते हुए मन बुद्धि को भी स्वस्थ दिशा में विकसित करे। हर पदार्थ में स्थूल गुणों के साथ-साथ एक सूक्ष्म गुण भी होता है। खाद्य पदार्थो के जो स्थूल गुण हैं उनका भला-बुरा प्रभाव शरीर पर पड़ेगा और उसके जो सूक्ष्म गुण होंगे उनका प्रभाव मन बुद्धि पर पड़ेगा। इसी कुप्रभाव को ध्यान में रखकर ऋषियों ने भक्ष-अभक्ष का निर्णय किया था।

नशे मन और बुद्धि का नाश करने वाले हैं। शरीर पर उनका कोई छोटा-मोटा लाभ भी होता हो, तो भी उनके द्वारा मानसिक हानि अत्यधिक होने के कारण उन्हें त्याज्य ठहराया गया है। कहा जाता है कि तम्बाकू भोजन पचाती है, चाय फुर्ती लाती है। शराब थकान मिटाती है, अफीम स्तभन करती है, भांग मस्ती लाती है। यदि यह बातें आंशिक रूप से ठीक भी हों तो भी उनके विषैलेपन के कारण जो क्षति होती है उसकी तुलना में यह लाभ अत्यन्त ही तुच्छ है। इसके अतिरिक्त इन नशीली चीजों का मानसिक क्षेत्र पर जो भारी कुप्रभाव पड़ता है उसकी हानि तो मनुष्य जीवन के उद्देश्य को ही नष्ट कर देने वाली है।

हमको यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि मनुष्य का हित सात्विक पदार्थों के सेवन में ही है मांस, मदिरा, गाँजा, भाँग, चाय, तम्बाकू आदि सभी पदार्थ तामसी होते हैं और उसके सेवन से मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट होकर विपरीत कार्यों की रुचि उत्पन्न करती है। इनके द्वारा मनुष्य शारीरिक और मानसिक दृष्टि से निर्बल होता है और उसका आत्मिक पतन होता है। इसलिए किसी भी कल्याण कामी व्यक्ति को इन निकृष्ट पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।



मूल्य २.०० रु०

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा

गायत्री विद्या सैट

१.	गायत्री साधना और यज्ञ प्रक्रिया	३.००
२.	गायत्री की शक्ति और सिद्धि	३.००
३.	गायत्री की युगांतरीय चेतना	३.००
४.	गायत्री की प्रचंड प्राण ऊर्जा	३.००
५.	गायत्री की उच्चस्तरीय पाँच साधनाएँ	३.००
६.	देवताओं, ऋषियों और अवतारों की उपास्य..	३.००
७.	गायत्री के प्रत्यक्ष चमत्कार	३.००
८.	गायत्री का सूर्योपस्थान	३.००
९.	गायत्री और यज्ञ का अन्योन्याश्रित संबंध	३.००
१०.	गायत्री साधना से कुंडलिनी जागरण	३.००
११.	गायत्री का ब्रह्मवर्चस्	३.००
१२.	गायत्री पंचमुखी और एकमुखी	३.००
१३.	महिलाओं की गायत्री उपासना	३.००
१४.	गायत्री के दो पुण्य प्रतीक-शिखा और सूत्र	३.००
१५.	गायत्री का हर अक्षर शक्ति का स्रोत	३.००
१६.	गायत्री साधना की सर्वसुलभ विधि	३.००
१७.	गायत्री पंचरत्न	३.००
१८.	गायत्री के अनुष्ठान और पुरश्चरण साधनाएँ	३.००
१९.	गायत्री की चौबीस शक्तिधाराएँ	३.००
२०.	गायत्री विषयक शंका समाधान	३.००
२१.	गायत्री का वैज्ञानिक आधार	३.००
२२.	गायत्री महाविज्ञान (प्रथम भाग)	२०.००
२३.	गायत्री महाविज्ञान (द्वितीय भाग)	२०.००
२४.	गायत्री महाविज्ञान (तृतीय भाग)	२०.००

युग निर्माण मिशन-संक्षिप्त परिचय

उद्देश्य : मनुष्य में देवत्व का उदय एवं धरती पर स्वर्ग का अवतरण । व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण, समाज निर्माण । विचारक्रांति, नैतिक क्रांति, धार्मिक क्रांति एवं सामाजिक क्रांति द्वारा जनमानस का भावनात्मक परिष्कार ।

गठन : नव निर्माण के लिए तत्पर नित्य समय दान और अंश दान करने वाले लाखों कर्मनिष्ठों का पारिवारिक संगठन । प्रचारात्मक, रचनात्मक और सुधारात्मक कार्यक्रमों द्वारा मानवीय गरिमा को उभारने वाली गतिविधियों में संलग्न समुदाय ।

आधार : सदस्यों का दैनिक श्रमदान एवं अंशदान । नित्य ५० पैसा और २ घण्टे समय का नियमित अनुदान । इसी सामर्थ्य के बलबूते अनेकों महत्वपूर्ण गतिविधियों का गत ५० वर्षों से संचालन ।

प्रमुख संस्थान : (१) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (२) अखण्ड ज्योति कार्यालय, मथुरा (३) गायत्री शक्तिपीठ, आंवलखेड़ा, आगरा (४) शांतिकुंज, हरिद्वार (५) ब्रह्मवर्चस्, हरिद्वार । भारत एवं विदेश में लगभग ४००० शक्तिपीठ, प्रज्ञापीठ एवं गायत्री परिवार की शाखाओं द्वारा प्रचार प्रसार ।

प्रकाशन : युग निर्माण योजना (हिन्दी मासिक), युग शक्ति गायत्री (गुजराती मासिक), अखण्ड ज्योति मासिक एवं अन्य कई पत्रिकाएं भारत की विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित । विभिन्न विषयों पर पूज्य गुरुदेव द्वारा रचित लगभग ५०० पुस्तकों का प्रकाशन देश की विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में ।

गतिविधियां एवं प्रचार : धर्म तंत्र से लोकशिक्षण, अग्नि साक्षी में सत्प्रवृत्तियां अपनाने के संकल्प युग निर्माण विद्यालय, मथुरा, नौ दिवसीय साधना सत्र ए वं एक मासीय युग शिल्पी सत्रों का नियमित आयोजन । टोलियों द्वारा देश-विदेश में मिशन का प्रचार-प्रसार । कार्यक्षेत्र : समस्त भारतवर्ष एवं विश्व ।